यज्ञोपवीत

संस्कार-विवेचन

श्रीराम शर्मा आचार्य

यज्ञोपवीत संस्कार विवेचन

शिखा और सूत्र यह दो हिन्दू धर्म के सर्वमान्य प्रतीक हैं । सुन्नत होने से किसी को मुसलमान ठहराया जा सकता है, सिख धर्मानुयायी पंच–केशों के द्वारा अपनी धार्मिक मान्यता प्रकट करते हैं । पुलिस, फौज, जहाज और रेल आदि विभागों के कर्मचारी अपनी पोशाक से पहचाने जाते हैं । इसी प्रकार हिन्दू धर्मानुयायी अपने इन दो प्रतीकों द्वारा अपनी धार्मिक निष्ठा को प्रकट करते हैं । शिखा का महत्व अलग ट्रेक्ट में लिखेंगे, यहाँ यज्ञोपवीत की ही विवेचना की जा रही है ।

उपयोगिता और आवश्यकता–

यज्ञोपवीत के धागों में नीति का सारा सार सन्निहित कर दिया गया है । जैसे कागज और स्याही के सहारे किसी नगण्य से पत्र या तुच्छ–सी लगने वाली पुस्तक में अत्यन्त महत्वपूर्ण ज्ञान–विज्ञान भर दिया जाता है, उसी प्रकार सूत के इन नौ धागों में जीवन विकास का सारा मार्गदर्शन समाविष्ट कर दिया गया है । इन धागों को कन्धों पर, हृदय पर, कलेजे पर, पीठ पर प्रतिष्ठापित करने का प्रयोजन यह है कि सन्निहित शिक्षाओं का यज्ञोपवीत के ये धागे हर समय स्मरण करायें और उन्हीं के आधार पर हम अपनी रीति–नीति का निर्धारण करते रहें ।

जन्म से मनुष्य भी एक प्रकार का पशु ही है । उसमें स्वार्थपरता की प्रवृत्ति अन्य जीव–जन्तुओं जैसी ही होती है, पर उत्कृष्ट आदर्शवादी मान्यताओं द्वारा वह मनुष्य बनता है । जब मानव की आस्था यह बन जाती है कि उसे इंसान की तरह ऊँचा जीवन जीना है और उसी आधार पर वह अपनी कार्य पद्धति निर्धारित करता है, तभी कहा जा सकता है कि इसने पशु–योनि छोड़कर मनुष्य योनि में प्रवेश किया अन्यथा नर–पशुओं से तो यह संसार भरा ही पड़ा है । स्वार्थ संकीर्णता से निकल कर परमार्थ की महानता में

प्रवेश करने को, पशुता को त्याग कर मनुष्यता ग्रहण करने को दूसरा जन्म कहते हैं । शरीर–जन्म माता–पिता के रज–वीर्य से वैसा ही होता है जैसा अन्य जीवों का । आदर्शवादी जीवन लक्ष्य अपना लेने की प्रतिज्ञा लेना ही वास्तविक मनुष्य जन्म में प्रवेश करना है । इसी को द्विजत्व कहते हैं । द्विजत्व का अर्थ है–दूसरा जन्म । हर हिन्दू धर्मानुयायी को आदर्शवादी जीवन जीना चाहिए, द्विज बनना चाहिए । इस मूल तथ्य को अपनाने की प्रक्रिया को समारोहपूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार के नाम से सम्पन्न किया जाता है । इस व्रत–बंधन को आजीवन स्मरण रखने और व्यवहार में लाने की प्रतिज्ञा तीन लड़ों वाले यज्ञोपवीत की उपेक्षा करने का अर्थ है–आदर्श–जीवन जीने की प्रतिज्ञा से इन्कार करना । ऐसे लोगों का किसी जमाने में सामाजिक बहिष्कार किया जाता था, उन्हें लोग छूते तक भी न थे, अपने पास नहीं बिठाते थे । इस सामाजिक दण्ड का प्रयोजन यही था कि वे प्रताड़ना–दबाव में आकर पुनः मानवीय आदर्शों पर चलने की प्रतिज्ञा– यज्ञोपवीत धारण को स्वीकार करें । आज जो अन्त्यज, चाण्डाल आदि दीखते हैं, वे किसी समय के ऐसे ही बहिष्कृत व्यक्ति रहे होंगे । दुर्भाग्य से उनका दण्ड कितनी ही पीड़ियाँ बीत जाने पर भी उनकी सन्तान को झेलना पड़ रहा है । कितनी बड़ी विडम्बना है कि जिन्हें यज्ञोपवीत धारी बनाने के लिए कोई दण्ड व्यवस्था की गई थी, उनकी सन्तानें अब यदि यज्ञोपवीत पहनने को इच्छुक एवं आतुर हैं, तो उन्हें वैसा करने से रोका जाता है ।

शास्त्रों के अभिवचन–

यज्ञोपवीत द्विजत्व का चिन्ह है । कहा भी है–

मातुरग्रेऽधिजननम् द्वितीयम् मौञ्जि बन्धनम् ।

अर्थात्–पहला जन्म माता के उदर से और दूसरा यज्ञोपवीत धारण से होता है ।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणम् कृणुते गर्भमन्तः ।
त रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्ति तं जातंद्रष्टुमभि संयन्ति देवाः ।।

–अथर्व ११।३।५।३

अर्थात्–गर्भ में रहकर माता और पिता के सम्बन्ध से मनुष्य का पहला जन्म होता है । दूसरा जन्म विद्या रूपी माता और आचार्य रूप पिता द्वारा गुरुकुल में उपनयन और विद्याभ्यास द्वारा होता है ।

"सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र" में लिखा है कि यज्ञोपवीत के नौ धागों में नौ देवता निवास करते हैं । (१) ओङ्मकार (२) अग्नि (३) अनन्त (४) चन्द्र (५) पितृ (६) प्रजापति (७) वायु (८) सूर्य (९) सब देवताओं का समूह । वेदमन्त्रों से अभिमंत्रित एवं संस्कारपूर्वक कराये यज्ञोपवीत में ९ शक्तियों का निवास होता है । जिस शरीर पर ऐसी समस्त देवों की सम्मिलित प्रतिमा की स्थापना है, उस शरीर रूपी देवालय को परम श्रेय साधन ही समझना चाहिए ।

"सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र" में यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण उल्लेख है–

ब्रह्मणोत्पादितं सूत्रं विष्णुना त्रिगुणी कृतम् ।
कृतो ग्रन्थिस्त्रनेत्रेण गायत्र्याचाभि मन्त्रितम् ।।

अर्थात्–ब्रह्माजी ने तीन वेदों से तीन धागे का सूत्र बनाया । विष्णु ने ज्ञान, कर्म, उपासना इन तीनों काण्डों से तिगुना किया और शिवजी ने गायत्री से अभिमंत्रित कर उसमें ब्रह्म गाँठ लगा दी । इस प्रकार यज्ञोपवीत नौ तार और ग्रन्थियों समेत बनकर तैयार हुआ ।

यज्ञोपवीत के लाभों का वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार मिलता है–

येनेन्द्राय वृहस्पतिवृर्व्यस्तः पर्यद धाद मृतं नेनत्वा ।
परिदधाम्यायुष्ये दीर्घायुत्वाय वलायि वर्चसे ।।

पारस्कर गृह्य सूत्र २।२।७

"जिस प्रकार इन्द्र को बृहस्पति ने यज्ञोपवीत दिया था उसी तरह आयु, बल, बुद्धि और सम्पत्ति की वृद्धि के लिए यज्ञोपवीत पहना जाय ।"

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋृषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जन्या ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा दधति परमे व्योमन् ।।

–ऋग्वेद १०।१०९।४

अर्थात्–तपस्वी, ऋषि और देवतागणों ने कहा कि यज्ञोपवीत की

शक्ति महान् है । यह शक्ति शुद्ध चरित्र और कठिन कर्तव्य पालन की प्रेरणा देती है । इस यज्ञोपवीत को धारण करने से जीव–जन भी परम पद को पहुँच जाते हैं ।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रयं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।

–ब्रह्मोपनिषद्

अर्थात्–यज्ञोपवीत परम पवित्र है, प्रजापति ईश्वर ने इसे सबके लिए सहज बनाया है । यह आयुवर्धक, स्फूर्तिदायक, बन्धनों से छुड़ाने वाला एवं पवित्रता, बल और तेज देता है ।

त्रिरस्यता परमा सन्ति सत्या स्यार्हा देवस्य जनि मान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्थो रोरुचानः ।।

–४।१।७

अर्थात्–इस यज्ञोपवीत के परम श्रेष्ठ तीन लक्षण हैं । १. सत्य व्यवहार की आकांक्षा २. अग्नि जैसी तेजस्विता ३. दिव्य गुणों से युक्त प्रसन्नता इसके द्वारा भली प्रकार प्राप्त होती है ।

नौ धागे नौ गुणों के प्रतीक हैं । १. अहिंसा २. सत्य ३. अस्तेय ४. तितिक्षा ५. अपरिग्रह ६. संयम ७. आस्तिकता ८. शान्ति ९. पवित्रता । १. हृदय से प्रेम २. वाणी में माधुर्य ३. व्यवहार में सरलता ४. नारी मात्र में मातृत्व की भावना ५. कर्म में कला और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ६. सबके प्रति उदारता और सेवा भावना ७. गुरुजनों का सम्मान एवं अनुशासन ८. सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय एवं सत्संग ९. स्वच्छता, व्यवस्था और निरालस्यता का स्वभाव । यह भी नौ गुण बताये गये हैं । अभिनव संस्कार पद्धति में इनके श्लोकं भी दिये गये हैं ।

यज्ञोपवीत पहनने का अर्थ है–नैतिकता एवं मानवता के पुण्य कर्तव्यों को अपने कन्धों पर परम पवित्र उत्तरदायित्व के रूप में अनुभव करते रहना । अपनी गतिविधियों का सारा ढाँचा इस आदर्शवादिता के अनुरूप ही खड़ा करना । इस उत्तरदायित्व को अनुभव करते रहने की प्रेरणा का यह प्रतीक सूत्र धारण किये रहना

प्रत्येक हिन्दू का आवश्यक धर्म-कर्तव्य माना गया है । इस लक्ष्य से अवगत कराने के लिए समारोहपूर्वक उपनयन किया जाता है ।

विधि व्यवस्था-

बालक जब थोड़ा समझदार हो जाय और यज्ञोपवीत के आदर्शों को समझने एवं नियमों को पालने योग्य हो जाय तो उसका उपनयन संस्कार कराना चाहिए । साधारणतया १२ से १३ वर्ष की आयु इसके लिए ठीक है । जिनका तब तक न हुआ हो तो वे कभी भी करा सकते हैं । जिन महिलाओं की गोदी में छोटे बच्चे नहीं वे भी उसे धारण कर सकती हैं । जो पहनें उन्हें १. मल-मूत्र त्यागते समय जनेऊ को कान पर चढ़ाना २. गायत्री की प्रतिमा यज्ञोपवीत की पूजा प्रतिष्ठा के लिए एक माला (१०८ बार) गायत्री मन्त्र का नित्य जप करना, ३. कण्ठ से बिना बाहर निकाले ही साबुन आदि से उसे धोना, ४. एक भी लड़ टूट जाने पर उसे निकाल कर दूसरा पहनना, ५. घर में जन्म-मरण, सूतक, हो जाने या छः महीने बीत जाने पर पुराना जनेऊ हटाकर नया पहनना, ६. चाबी आदि कोई वस्तु उसमें न बाँधना-इन नियमों का पालन करना चाहिए ।

जब भी यज्ञोपवीत पहनना या उतारना पड़े तब निम्न मंत्रों को पढ़ा जाय ।

पहनने का मंत्र-

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रयं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।

उतारने का मंत्र-

ओ३म् एतावद्दिन पर्यन्तं ब्रह्मत्वं धारितं मया ।
जीर्णत्वात् परित्यागो गच्छ सूत्र यथा सुखम् ।।

अन्य संस्कारों की भाँति उपनयन संस्कार में भी मण्डप, यज्ञ-वेदी, पूजा-उपकरण आदि सभी वस्तुयें यथावत् एकत्रित एवं सुसज्जित रखनी चाहिए । बालक को क्षौर, स्नान कराके पीले नये शुद्ध वस्त्र पहनने चाहिए । अन्य संस्कारों की भाँति कार्यारम्भ किया जाय । अक्षत फेंकते हुए "भद्रम् कर्णेभिः" मंत्र से यजमान के स्थान

पर यज्ञोपवीत धारण करने वाले को बिठाया जाय । इसके बाद पवित्रीकरण, आचमन, शिखाबन्धन, प्राणायाम, न्यास, पृथ्वी पूजन, आचार्य वरण, तिलक, संकल्प, पंचामृत–निर्माण एवं पान, प्रयुक्त होने वाली सभी वस्तुओं का मार्जन, दीप–पूजन, कलश–पूजन, देव–पूजन, नमस्कार, षोडशोपचार, चन्दनधारण, स्वस्ति–वाचन, रक्षा–विधान यह सब कृत्य गायत्री हवन विधि के अनुसार कर लिए जायें । तदुपरान्त यज्ञोपवीत संस्कार के विशेष कार्यक्रमों का क्रम चलाया जाय । इस संदर्भ में सबसे प्रथम कृत्य मेखला–बन्धन एवं कोपीन धारण है ।

मेखला और कोपीन धारण–

कमर में बाँधने की मेखला (कौंधनी) कलावे की बनाकर तैयार रखी जाय, कोपीन उसी के साथ हो । इन दोनों वस्तुओं को 'आपे हिष्टा' मंत्र से छींटे देकर पवित्र किया जाय । आचार्य दोनों हाथों के बीच इन्हें रखकर पाँच बार मानसिक गायत्री जपकर अभिमन्त्रित करे । इसके उपरान्त 'ॐ इयं.....दुरुक्तं......'मंत्र उच्चारण करते हुए मेखला को कमर में बाँध दिया जाय । कोपीन उसी में लपेट दी जाय और कह दिया जाय कि वह संस्कार समाप्त होने के बाद उसे ठीक तरह पहन ले ।

मेखला और कोपीन धारण करने का प्रयोजन ब्रह्मचर्य पालन और प्रत्येक कार्य में जागरूक, निरालस्य एवं कर्तव्य पालने में कटिबद्ध रहने की प्रेरणा देना है । कोपीन पहनना अर्थात् लंगोट बांधना । ब्रह्मचारी भी पहलवानों की तरह लंगोट बाँधते हैं । लंगोट बाँधना ब्रह्मचर्य पालन का प्रतीक है । किशोरों को यही रीति–नीति अपनानी चाहिए । यदि उस अवधि में उसे नष्ट किया गया तो शरीर और मन दोनों का विकास रुक जायगा । अपव्यय के कारण जो खोखलापन इन दिनों उत्पन्न हो जायगा उसकी क्षति–पूर्ति फिर कभी न हो सकेगी, लड़कियों की शारीरिक अभिवृद्धि २० वर्ष की आयु तक और लड़कों की २५ वर्ष तक होती है । यह समय दोनों के लिए सतर्कता पूर्वक शक्तियों के संरक्षण का है । ताकि उनका उपयोग शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की नींव पक्की करने में हो

सके । यह अवधि विद्या पढ़ने, मन लगाकर मानसिक एवं व्यायाम ब्रह्मचर्य आदि के द्वारा शारीरिक परिपुष्टता प्राप्त करने की है । जो इस कच्ची उम्र में जीवन रस के साथ खिलवाड़ करना आरंभ कर देते हैं, वे एक प्रकार से आत्महत्या ही करते हैं । इस भूल के कारण उत्पन्न हुई शक्तिहीनता पर उन्हें आजीवन पश्चात्ताप करना पड़ता है । इसलिए कोपीन पहनाकर यज्ञोपवीत संस्कार के साथ एक प्रकार से व्रत धारण कराया जाता है कि ब्रह्मचर्य तत्व-ज्ञान को ठीक तरह समझा एवं अपनाया जायगा । जो बड़ी आयु के व्यक्ति यज्ञोपवीत लें वे भी ध्यान रखें कि इन्द्रिय संयम की दिशा में वे जितनी अधिक कड़ाई बरतेंगे उतना ही उनके लिए श्रेयस्कर है । विवाहित होने का अर्थ मर्यादाओं को तोड़-फोड़ डालना और क्षणिक आवेशों के आकर्षण में अपनी मूल्यवान जीवन पूँजी को जला डालना नहीं है । पति-पत्नी का युग्म अपनी शक्ति सामर्थ्य को बढ़ाकर एक-दूसरे की सहायता करें यही विवाह का उद्देश्य है, प्रेम का यही स्वरूप है । एक-दूसरे की शक्तियों को नष्ट करने और साथी को शारीरिक-मानसिक रोगों में फँसा देने की कुचेष्टाओं को यदि बढ़ा दिया जाय तो यह प्रेम कहाँ रहा, यह तो शत्रुता हुई । विवाहितों को अपने साथी के प्रति शत्रुता की नहीं मित्रता की नीति बरतनी चाहिए । प्रेम में त्याग करना पड़ता है । यह त्याग दाम्पत्य जीवन में अधिकाधिक संयम ब्रह्मचर्य के रूप में आवे तो ही सराहनीय है । कोपीन पहनाते हुए यही शिक्षा दी जाती है ।

कमर में मेखला बाँधने का प्रयोजन वही है जो पुलिस तथा फौज व सैनिक कमर में पेटी बाँधकर पूरा करते हैं । कमर बाँधकर कटिबद्ध रहना जागरूकता एवं सतर्कता का चिन्ह है । आलस्य और प्रमाद छोड़कर अपने नियत कर्तव्य कर्म के लिए मनुष्य को सदा उत्साह एवं प्रसन्नता के साथ तत्पर रहना चाहिए । आलस, प्रमाद, लापरवाही, ढील-पोल दीर्घसूत्रता जैसे दुर्गुणों को पास भी नहीं फटकने देना चाहिए । आलसी और लापरवाह व्यक्ति आर्थिक ही नहीं हर दिशा में अपनी अपार क्षति करते रहते हैं । सौभाग्य इनके

आगे आता है और उपयोग न किये जाने के कारण यों ही वापस चला जाता है । जिनके साथ ऐसे लापरवाह लोग काम करते हैं उनकी भी भारी क्षति होती है । निर्धारित उत्तरदायित्वों को पूरा करने में ढील-पोल रखकर बिगड़ते हुए कार्यों की ओर से बेखबर बने रहने के कारण ऐसे लोग उनको भी चौपट कर देते हैं, जिनके साथ रहते हैं या जिनका कार्य संभालते हैं । जागरूक चोर और लापरवाह ईमानादार में से यदि तुलना की जाय तो लापरवाह ईमानदार अधिक हेय माना जा सकता है । चोर अपना काम तो बनाता है पर साथ ही जाकरूकता की विशेषता के कारण जहाँ रहता है, वहाँ नुकासान नहीं होने देता । इसके विपरीत लापरवाह व्यक्ति न अपना काम बना पाता है न दूसरों का । वह सभी की हानि करता है । इसलिए बुद्धिमान मनुष्य उस व्यक्ति को साथी नहीं बनाते जो लापरवाह होता है । उससे किसी का भी भला नहीं होता, केवल हानि ही हानि की संभावना रहती है । आलस्य चाहे शारीरिक हो चाहे मानसिक उसे साक्षात् मूर्तिमान दारिद्र या दुर्भाग्य ही कहना चाहिए । इस बुरी आदत से सर्वथा बचा जाय, इसके लिये मेखला पहनाते हुए यज्ञोपवीतधारी को यह प्रेरणा दी जाती है कि वह इस कार्यक्षेत्र में सदा अपने कर्तव्यपालन के लिए फौजी सैनिक की तरह कटिबद्ध रहे । जागरूकता और सतर्कता को, स्फूर्ति और आशा, साहस और धैर्य को अपना सच्चा सहचर समझें ।

दण्ड धारण-

यज्ञोपवीत धारण करने वाले को कोपीन-मेखला के उपरान्त दण्ड दिया जाता है । यह लाठी इसलिए दी जाती है कि वह उसे साथ रखें । दैनिक उपयोग में कुत्ते, साँप, बिच्छू आदि से रक्षा, पानी की थाह लेना, आक्रमणकारियों से आत्मरक्षा, अपनी शक्ति एवं साहसिकता का प्रदर्शन आदि कितने ही छुटपुट लाभ हैं । शस्त्र-सज्जा में लाठी सर्वसुलभ और अधिक विश्वस्त है । उसे साथ रखने से साहस बढ़ता है । लाठी चलाना एक बहुत ही उच्चस्तर का व्यायाम है । उससे देह-बल के साथ मनोबल भी बढ़ता है । लाठी चलाना हर धर्म

प्रेमी को आना चाहिए ताकि दुष्ट, आततायी और अधर्मियों के हौसले पस्त करने की सामर्थ्य दिखा सकें । संसार में अन्याय और शोषण इसलिए बढ़ा है कि उसका समुचित प्रतिकार नहीं किया गया । सताये जाने वाले लोग चुपचाप सहन करते रहते हैं । प्रतिकार के लिए जिस साहस और और तेजस्विता की आवश्यकता होती है, उसे वे दिखा नहीं पाते अतएव दुष्टों को इसे कायरता एवं भीरुता मानकर अधिक अन्याय करने को प्रोत्साहन मिलता है । उनकी हिम्मत बढ़ती है और फिर दूसरे अनेकों पर इसी प्रकार अनीति बरतते हुए संसार में गुण्डागर्दी, अनीति एवं अशान्ति फैलाते रहते हैं ।

अन्याय सहना भी अन्याय करने के समान ही पाप है । दोनों ही पापी अपने–अपने ढंग के दण्ड भोगते हैं । अन्याय करने वाला मरने के बाद नरक को जाता है और अन्याय सहने वाला इसी जन्म में धनहानि, अपमान, असुविधा एवं आघात के कष्ट सहता रहता है । इसलिए हर धर्मप्रेमी को अनीति का प्रबल विरोध करने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए । इस तत्परता का एक प्रतीक–उपकरण लाठी है । यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ है–पशुता का परित्याग एवं मानवता को अंगीकार करना । इस परिवर्तन की प्रतिक्रिया यह तो होनी ही है कि नर–पशुओं के रोष एवं असन्तोष का निमित्त बनना पड़े । जहाँ सौ झूँठे रहते हों वहाँ एक सत्यवादी को सताया एवं तिरस्कृत किया जाता है । ऐसी सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए उसे आवश्यक धैर्य, साहस एवं आत्मबल का एकत्रीकरण करना होता है । इस तैयारी की बात को सदा स्मरण रखने के लिए दण्ड धारण का विधान रखा गया है ।

लाठी आमतौर से बाँस की होती है । बाँस की अनेक गाँठें मिलकर पूरा दण्ड बनता है । इसका प्रयोजन यह है कि अनेक व्यक्तियों के मिल–जुलकर रहने से, संगठित होने से ही धर्म रक्षा की शक्ति का निर्माण होता है । संघ शक्ति ही इस युग में सर्वोपरि है । उसी के द्वारा धर्म रक्षा एवं अधर्म का प्रतिकार सम्भव हो सकता है । धर्मात्मा व्यक्ति वैसे ही थोड़े हैं, इस पर भी वे असंगठित रहें तो

फिर उनके आदर्श अच्छे रहते हुए भी व्यवहार की दृष्टि से उन्हें बेवकूफ ही कहा जायगा । बेवकूफ सदा पिटते रहते हैं । असंगठित धर्मप्रेमियों को यदि तिरस्कृत एवं असफल रहना पड़े तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं । खण्डों से मिलकर बना हुआ दण्ड हाथ में धारण करते समय यज्ञोपवीतधारी—मानवीय आदर्शों को अपनाने वाले को यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसे साहसी शूरवीर ही नहीं संगठन की उपयोगिता एवं आवश्यकता को भी समझना—स्वीकार करना चाहिए । अपने क्षेत्र में धर्म—प्रेमियों को संगठित करने की बात उसे सदा ध्यान में रखनी पड़ती है ।

दण्ड, सत्ता एवं उत्तरदायित्व का भी प्रतीक है । शासनाध्यक्ष के हाथ में एक रौल जैसा 'दण्ड' अभिषेक एवं शपथ ग्रहण करते समय सौंपा जाता है । यह राजसत्ता हाथ में लेने का प्रतीक है । पुलिस, फौज के वरिष्ठ अफसरों के हाथ में भी एक छोटा—सा दण्ड आजकल रहता है । यह राजसत्ता को हाथ में सम्भाले रहने की भावना का प्रतीक है । कितने ही सन्यासी हाथ में धर्म—दण्ड रखते हैं, इसका अर्थ है कि वे धर्मरक्षा का उत्तरदायित्व अपने हाथ एवं कन्धों पर लिए हुए हैं । हर यज्ञोपवीतधारी के हाथ में भी यह धर्म—दण्ड सौंपा जाता है और यह आशा की जाती है कि वह आजीवन यह उत्तरदायित्व अनुभव करेगा कि उसे व्यक्तिगत जीवन में ही धर्मात्मा नहीं रहना वरन् समाज में, संसार में जो अधर्म होता हो, उसका प्रतिकार करने के लिए भी वह यथाशक्ति प्रयत्न करेगा । दण्ड प्रदान करने का मंत्र 'ॐ यो मे दण्ड....' है । कोई संभ्रान्त व्यक्ति दण्ड प्रदान करे और व्रतधारी उसे दोनों हाथों में ग्रहण करे ।

सूर्य दर्शन और अर्घ्यदान—

तदुपरान्त सूर्य दर्शन एवं सूर्गार्घ्यदान की क्रिया है । संस्कारार्थी सूर्य भगवान को देखता है और तीन अंजलि भर के उन्हें जल प्रदान करता है । दर्शन का मंत्र 'ॐ तच्चक्षुर्देव हितं....' और अंजलि अर्घ्यदान, का 'सूर्य देव सहस्रांशो' अथवा 'ॐ आपोहिष्टा मयोभव....' है ।

सूर्य के समान तेजस्वी बनना, उष्णता धारण किये रहना, गतिशील रहना, लोक कल्याण के लिए जीवन समर्पित करना, स्वयं प्रकाशित होना, अपने प्रकाश से दूसरों को प्रकाशित करना, अन्धकार रूपी अज्ञान को दूर करना जैसी अनेक प्रेरणायें सूर्य दर्शन करते हुए ग्रहण की जाती हैं । सूर्य आगे बढ़ता चलता है, पर साथ में अपने अन्य ग्रह, उपग्रहों को भी घसीटता ले चलता है । यज्ञोपवीतधारी को स्वयं तो प्रगति के पथ पर आगे बढ़ना ही है, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना है कि व्यक्तिगत उन्नति से ही सन्तोष न कर लिया जाय, अपने साथी समीपवर्ती लोगों को भी आगे बढ़ाते हुए साथ चलने का प्रयत्न करना है । सूर्य उदय होते हुए लाल और अस्त होते हुए भी लाल रहता है । उदय और अस्त में, हानि और लाभ में मनुष्य को संतुलित, धैर्ययुक्त एवं एक–सा रहना चाहिए । न तो सम्पत्ति से उन्मत्त हों और न विपत्ति में शोक संताप से विक्षुब्ध हों । धूप–छाँह की तरह जीवन में प्रिय–अप्रिय परिस्थितियाँ आती जाती रहती हैं, उन्हें हँसते–खेलते एवं क्रीड़ा–विनोद की तरह देखना चाहिए और शान्त चित्त से अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर बिना एक क्षण भी उद्वेगों में गँवाये, आगे बढ़ते चलना चाहिए । सूर्य के समान लोक कल्याण के आयोजनों में पूरी अभिरुचि रखने की कार्य पद्धति अपनाने की योजना बनानी चाहिए । भगवान भास्कर अपनी किरणों द्वारा समुद्र के पानी को भाप बनाकर बादलों के रूप में परिणित करते हैं । बादलों से वर्षा होती है, उसी पर वृक्ष, वनस्पति, जीव–जन्तु, पशु–पक्षी और मनुष्यों का जीवन निर्भर है ।

सूर्य किरणों की गर्मी निर्जीव प्रकृति को सजीव बनाती है । ससार में जितना जीवन–तत्व है वह सब सूर्य से ही आया है, इसलिए सूर्य को जगत् की आत्मा भी कहा गया है । हमें भी सूर्य के दर्शन करते हुए इसी रीति को अपनाना चाहिए और श्रद्धापूर्वक तीन बार अञ्जलि देते हुए शरीर, मन और धन से इन आदर्शों में तत्पर रहने की सहमति स्वीकृति प्रकट करनी होती है ।

तीन भाव देवियाँ–

पूजा वेदी पर तीन ढेरियाँ स्थापित करके उसमें गायत्री, सावित्री, सरस्वती के लिए पीत और सरस्वती की प्रतिष्ठापना की जाती है । गायत्री के लिए हरे चावलों की ढेरी लगाई जाती हैं । इन्हें पुष्पों से सजाया जाता है और ऊपर आटे के बने बीच की बत्ती वाले घृत दीप रखे जाते हैं । इन तीनों महाशक्तियों की पूजा यज्ञोपवीत धारण करने वाला करता है । गायत्री पूजन का मन्त्र 'ॐ तां सवितुर्वरेण्यम्य....' सावित्री पूजन का 'ओ३म् सवित्रा, प्रसवित्रा, सरस्वती......' और सरस्वती पूजन का मंत्र 'ॐ पावका नः सरस्वती......' है । पुष्प, धूप, टीप, नैवेद्य, अक्षत, जल से इन तीनों का पूजन करना चाहिए ।

गायत्री आध्यात्मिक ज्ञान की, सावित्री भौतिक ज्ञान की एवं सरस्वती बौद्धिक ज्ञान की प्रतीक हैं । इन तीनों का समुचित संचय करना ही ज्ञान संचय का, विद्याध्ययन का लक्ष्य होना चाहिए ।

अध्ययन की प्राचीन परम्परा–

प्रचीनकाल में यह प्रथा थी कि छोटे बालक अक्षर ज्ञान अपने अभिभावकों के सान्निध्य में घर रहते हुए प्राप्त करते थे और प्राथमिक शिक्षा पूरी करके थोड़ा समझदार होते ही उत्कृष्ट व्यक्तियों के सान्निध्य में रहकर जीवन–निर्माण की कला, संजीवनी विद्या, ब्रह्म विद्या प्राप्त करने के लिए गुरुकुलों में चले जाते थे । गुण, कर्म, स्वभाव का निर्माण पुस्तकों या लेक्चरों से नहीं हो सकता, उसके लिए उपयुक्त वातावरण चाहिए । वैसा वातावरण जो बालकों के कोमल मस्तिष्कों को सही दिशा में प्रेरणा दे सके, श्रेष्ठ व्यक्तित्वों की समीपता में ही सम्भव है । इसलिए वयस्क शिक्षार्थी अपनी किशोर अवस्था, जो जीवन निर्माण की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील है, सुयोग्य आचार्यों के, ऋषियों के सान्निध्य में ही बिताते थे । इस शिक्षा में आध्यात्मिक ज्ञान, भौतिक ज्ञान एवं बौद्धिक ज्ञान तीनों का ही समुचित समावेश होता था ताकि शिक्षार्थी आत्मिक दृष्टि से विवेकवान बन सके । तीनों उद्देश्यों को समग्र रूप से सम्पन्न कर

सकने वाली शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है । इस प्रकार का अध्ययन प्रारम्भ कराते हुए, गुरुकुल प्रवेश के समय यज्ञोपवीत संस्कार कराया जाता था, उसी के साथ-साथ वेदारम्भ होता था । वेद ज्ञान और विज्ञान के भाण्डागार हैं । इसलिए अध्ययन का प्रमुख माध्यम उन्हें ही रखा जाता था । आज वैसी परम्परा नहीं रही, फिर भी अभिभावकों को यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसके बालक केवल अर्थकारी शिक्षा तक ही सीमित न रह जायें । आत्म-निरीक्षण की दिशा में भी उनका ज्ञान और प्रयत्न बढ़ता रहे । यज्ञोपवीत संस्कार का यही निर्देश है ।

गायत्री पूजन का उद्देश्य-

व्यक्ति एवं समाज की समस्यायें सामयिक परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं । पिछले सौ वर्षों में विज्ञान ने जिस तेजी से विकास किया है, उसने समाज का स्वरूप ही बदल दिया है । कितने प्रकार की नई समस्यायें उत्पन्न कर दी हैं । कितने प्रकार की नई मशीनें बनी हैं । इन समस्याओं का ठीक हल समझना ही ज्ञान का वास्वविक स्वरूप हो सकता है । आध्यात्मिक सिद्धान्त तो शाश्वत एवं प्राचीन ही हैं, पर आज की स्थिति में व्यक्ति उनका कहाँ, कितना, कैसे प्रयोग कर सकता है, इसका वास्वविक स्वरूप बता सकने में समर्थ हो सके उसको ही सामयिक आध्यात्म कहना चाहिए । आज से हजारों-लाखों वर्ष पूर्व मानव-जीवन एवं समाज की स्थिति भिन्न थी, वह पुराने शास्त्र, पुराणों में वर्णित है । आज के शास्त्र वे ही हैं जो आज की समस्याओं का आज की स्थिति के अनुरूप हल सुझावें । ऐसे शास्त्र ही हमारी आज की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकते हैं, फिर भले ही वे संस्कृत भाषा में लिखे न होकर हिन्दी या अन्य किसी भाषा में ही लिखे क्यों न हों । गायत्री पूजा में यह संकेत है कि हम अपने व्यक्तित्व को सुसंस्कृत बनाने वाले गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्ट विचारणायें सीखें और उन्हें व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करने की कला जानें ।

सावित्री पूजन–

सावित्री पूजन का अर्थ है–भाषा, साहित्य, गणित, शिल्प, रसायन, चिकित्सा, व्यापार, कृषि, पशु–पालन आदि अर्थ उपार्जन में तथा लोक व्यवहार में काम आ सकने वाली जानकारियों का संग्रह । भौतिक उन्नति का आधार यही जानकारी है, आजकल पढ़ने–पढ़ाने का उद्देश्य भी यही है । सभी अर्थकारी विद्या के पीछे पड़े हैं । इसलिए इस सम्बन्ध में कुछ विशेष कहना नहीं है । सावित्री पूजा पर तो सब का ध्यान है ही ।

सरस्वती पूजन–

सरस्वती पूजा का अर्थ है–मानसिक विकास के लिए संसार की, अनेकानेक परिस्थितियों, समस्याओं, कारणों की जानकारी प्राप्त करना । आजकल बौद्धिक दृष्टि से मानव जाति निविड़, भ्रम, जंजालों में फँसी पड़ी है । धर्म और सम्प्रदायों की मान्यताओं में से तीन–चौथाई मान्यतायें अन्धविश्वास मात्र हैं, फिर भी करोड़ों लोग उनमें उलझे पड़े हैं और अपनी भ्रान्तियों को पत्थर की लकीर जैसी माने बैठे हैं । अपनी भ्रान्तियों को सच और दूसरों की विचारणाओं को गलत मानते हैं, इसी पर लड़ते, झगड़ते और एक–दूसरे की जान के ग्राहक बनते हैं । सामाजिक व्यवहार परम्पराओं में से भी तीन–चौथाई ऐसी मूर्खतापूर्ण हैं । मनुष्य मात्र की एक जैसी स्थिति होने के कारण उनका स्तर हर क्षेत्र में एक जैसा ही होना चाहिए था, पर रंगभेद, जाति–भेद, देश, प्रान्त, धर्म, भाषा आदि के कारण जो विषमता फैली पड़ी है और उनके परिपेक्षण के लिए लोग जिस ऐड़ी–चोटी से जुटे हुए हैं, उसे देखते हुए मानव जाति की बुद्धिमत्ता मूर्खता ही सिद्ध होती है । सन्तानोत्पादन जैसी एक यदाकदा प्रयोग में आ सकने वाली नगण्य–सी इन्द्रिय प्रकृति पर कामुकता का कितना विशालकाय कलेवर खड़ा कर दिया है, उसे देखकर हैरत होती है । कामुकता से भरे साहित्य, चित्र, काव्य, संगीत, अभिनय एक प्रकार से मनुष्य को पागल बनाने में लगे हुए हैं । नारी का तो वेश–विन्यास, हाव–भाव एवं स्तर ही ऐसा बन गया है मानो वह

इन्द्रिय भोग उपकरण मात्र ही हो। इस प्रचलित विडम्बना को जितना धिक्कारा जाय उतना ही कम है।

धन का अपरिमित मात्रा में नीति-अनीति का विचार किये बिना अन्धाधुन्ध कमाते जाना, उसे बेटों-पोतों के लिए जोड़ जमाकर रख जाना, सदुपयोग से कोसों दूर रहना, यह कितना बड़ा पागलपन है। धर्मभावी कहलाने वाले व्यक्तियों को यदि इसी श्रेणी का पागल या सनकी कहा जाय तो इसमें भी अत्युक्ति न होगी। हिन्दू समाज में विवाह, मृत्यु भोज आदि के नाम पर पैसे की होली जलाने की, निठल्ले धूर्तों को दान देकर पुण्य लाभ की मान्यता रखने की मूर्खता व्यापक रूप से फैली हुई है। उसे देखते हुए यह कहना पड़ता है कि मनुष्य ने झूँठ-मूँठ ही बुद्धिमत्ता का बाना पहन रखा है। उसमें सोचने की शक्ति तो है, पर उस शक्ति को सोचने की दिशा में लगा सकने की अकल से वंचित ही रहना पड़ रहा है। संसार के देश एक दूसरे के शोषण-दमन के लिए युद्ध की जितनी विशाल तैयारियाँ कर रहे हैं, उनके स्थान पर यदि परस्पर सहयोग की बात सोचते और जो जन-शक्ति, धन-शक्ति, साधन-शक्ति, संहार की तैयारी में लगी है, निर्माण की दिशा से लगी होती तो यह संसार स्वर्ग बन गया होता। पर मनुष्य की उस मूर्खता को क्या कहा जाय जिसके कारण उसे उचित-अनुचित और सही गलत तक का अन्तर समझने में नहीं आ रहा है।

यह कैसी सचाई है कि संसार में ज्ञान के नाम पर तीन-चौथाई अज्ञान फैला हुआ है और बुद्धिमान समझा जाने वाला मनुष्य स्वभाव और संस्कार से तीन-चौथाई अंश में मूर्ख एवं पथभ्रष्ट है। इस स्थिति में प्रचलित ढर्रे के पीछे लुढ़कने लगना किसी विचारशील व्यक्ति के लिए गौरव की बात नहीं हो सकती। सरस्वती पूजन का अर्थ यह है कि उसे सचाई जानने के लिए निष्पक्ष रीति से पढ़ना, समझना और सोचना चाहिए। जन-प्रवाह को अबुद्धिमत्ता और अदूरदर्शिता पूर्ण मानते हुए स्वतंत्र चिन्तन के, विवेक के आधार पर ही सत्य-असत्य का निर्णय करना चाहिए। इतना साहस हमें

एकत्रित करना ही चाहिए कि जन–प्रवाह के ढर्रे की उपेक्षा करते हुए सत्य को अपनाने के लिए कटिबद्ध हो सकें, भले ही इसके लिए पागल स्तर का उपहास या विरोध ही क्यों न सहना पड़े । ऐसी मनःस्थिति जिस भी माध्यम से बनाई या बढ़ाई जा सके उसे सरस्वती पूजन ही कहा जायगा । यज्ञोपवीतधारी को गायत्री एवं सावित्री की तरह सरस्वती का भी उपासक होना चाहिए और अपने विचार संस्थान को समग्र रूप से सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए । त्रिदेवी पूजा का यही निष्कर्ष है ।

इन तीनों देवियों की षोडशोपचार पूजा श्रीसूक्त के सोलह मंत्रों से की जा सकती है । अथवा 'गन्धम् समर्पयामि' 'पुष्पं समर्पयामि' सूत्रों से इन्हें पूजा जा सकता है । इनकी प्रतिष्ठा अभिवन्दना के लिए 'ॐ मनोजूतिर्जुताम्.....' मंत्र पढ़ा जा सकता है ।

यज्ञोपवीत पूजन और धारण–

अब यज्ञोपवीत पूजन, उसमें यज्ञ–शक्ति आह्वान, सूर्य–शक्ति आह्वान एवं धारणा करने का कार्यक्रम पूरा करना है । जनेऊ को सबसे प्रथम पवित्र करना चाहिए । उसे शुद्ध जल से, संभव हो तो गंगाजल से धोया जाय ताकि अब तक उस पर पड़े हुए स्पर्श संस्कार दूर हो जायें । इसके बाद उसे दोनों हाथों के बीच रखकर दस बार गायत्री मंत्र का मानसिक जप किया जाय । इतना करने पर वह पवित्र एवं अभिमंत्रित हो जाता है । इसके पश्चात् उसे किसी थाली या पत्तल पर रखकर तीन देवताओं की तीन शक्तियों को उसकी तीन लड़ों में प्रतिष्ठापित किया जाता है । प्रथम लड़ में ब्रह्मा दूसरी में विष्णु और तीसरी में रुद्र की स्थापना की जाती है । उपवीत इस ढंग से खुला रखा जाये कि उसकी तीनों लड़ें पृथक–पृथक रहें और उन पर पूजा उपादान चढ़ाये जा सकें । प्रथम लड़ से ब्रह्मा का आह्वान करते हुए 'ॐ ब्रह्म जज्ञान.....' मंत्र का, द्वितीय लड़ से विष्णु का आह्वान करते हुए 'ओ३म् इदम् विष्णुर्विचक्रमे.....' मंत्र का और तीसरी लड़ में रुद्र का आह्वान करते हुए 'ओ३म् नमस्ते रुद्र मन्यव...' इस

मंत्र का उच्चारण किया जाता है । चावल, रोली, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, जल को इन लड़ों पर छोड़ते हुए पूजन करते हैं ।

इसके उपरान्त सम्पूर्ण उपवीत में यज्ञ शक्ति का आह्वान करते हैं । दोनों हाथों के अंगूठे और सबसे छोटी उंगली में फँसा कर यज्ञोपवीत को खुला तान लेते हैं और उसे यज्ञवेदी की ओर करते हुए 'ॐ यज्ञेन यज्ञ मंत्र से यज्ञ आवाहन करते हैं । इसके उपरान्त दोनों हाथ ऊपर करके सूर्य की शक्ति यज्ञोपवीत में आने की भावना करते हैं और नेत्र बन्द करके सूर्य भगवान का ध्यान करते हैं । इस अवसर पर 'ओ३म् उपयाम विहीतोसि......' मंत्र बोला जाता है । इसके पश्चात् पाँच सुसंस्कारी व्यक्ति खड़े होकर उस यज्ञोपवीत को यजमान के हाथ में से ले लेते हैं । दाहिना हाथ ऊपर बाँया हाथ नीचे कराते हैं । पाँचों व्यक्ति दोनों हाथ पकड़कर उस यज्ञोपवीत को पहनाते हैं । धारण कराते समय 'ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं...' मंत्र बोला जाता है । इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण की क्रिया सम्पन्न होती है ।

पाँच देवताओं की प्रतिष्ठापना–

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यज्ञ और सूर्य–इन पाँच देवताओं को पाँच दिव्य भावनाओं का प्रतीक माना गया है । ब्रह्मा अर्थात् आत्मबल, विष्णु अर्थात् समृद्धि, महेश अर्थात् व्यवस्था, यज्ञ अर्थात् परमार्थ, सूर्य अर्थात् पराक्रम, इन पाँचों गुणों को देवता मानकर हम यज्ञोपवीत के माध्यम से अपने हृदय और कलेजे पर धारण करें अर्थात् उन्हें अपने आस्था एवम् प्रकृति का अंग बनावें तभी वास्तविक कल्याण का मार्ग मिलेगा ।

(१) ब्रह्मा–

जीवन के भौतिक और आत्मिक दोनों ही पहलू सुविकसित होने चाहिए । हमें आत्मबल से सम्पन्न होने के लिए संयमी, सदाचारी, मधुरभाषी, शालीन, नेक सज्जन, आस्तिक, सद्गुणी होना चाहिए । जिनका व्यक्तिगत जीवन पवित्र एवम् सद्भावना युक्त है, उसी का आत्मबल बढ़ेगा । यज्ञोपवीत में आवाहित प्रथम देवता ब्रह्मा को

धारण करने का तात्पर्य इस मान्यता को हृदयंगम करना एवम् उसके लिए प्रयत्नशील रहना ही है ।

(२) यज्ञ–

आत्मबल बढ़ाने के लिए दूसरा अनिवार्य माध्यम परमार्थ है । यज्ञ इसी प्रवृत्ति का परिचायक है । धार्मिक व्यक्ति वही है, जिसके जीवन से सेवा, उदारता, सहृदयता एवं परोपकार की वृत्ति फूटी पड़ती है । जिसे सभी अपने लगते हैं, जिसे सभी से प्रेम है, वही सच्चा आध्यात्मवादी कहा जायगा । उसे अनिवार्यतः अपनी महत्वाकांक्षाओं और गतिविधियों में परमार्थ को प्रधानता देनी ही होगी । ब्रह्मा और यज्ञ इन दो देवताओं से वैयक्तिक जीवन को पवित्र एवं लोक सेवा की प्रवृत्ति को अपनाने से आत्मबल बढ़ता है और मनुष्यत्व से देवत्व की ओर प्रगति होती है ।

(३) विष्णु–

दो देवता आत्मबल बढ़ाने वाले हैं और तीन देवता लोक–बल । विष्णु लक्ष्मी के स्वामी हैं । हमें दीन, दरिद्र, हेय, परावलम्बी, गई–गुजरी स्थिति में नहीं पड़ा रहना चाहिए । स्वास्थ्य, शिक्षा, कुशलता आदि गुणों को बढ़ाना चाहिए । उनकी कीमत पर सुख–साधनों को, समृद्धि को उपलब्ध करने का सही मार्ग केवल एक ही है, अपनी सर्वांगीण प्रतिभा एवं योग्यताओं को बढ़ाना । इस दिशा में जो जितना विकास कर लेगा, उसे उस मूल्य पर आसानी से अधिक सुख–साधन मिल जायेंगे । समृद्धि को मनुष्य दूसरों की सुविधा बढ़ाने में खर्च करे तो उससे लोक एवं परलोक की सुख–शान्ति बढ़ेगी । यज्ञोपवीत में स्थापित विष्णु का संदेश यही है ।

(४) महेश–

महेश का अर्थ है, नियन्त्रण, व्यवस्था, क्रमबद्धता, उचित का चुनाव । ब्रह्मा को उत्पादन का, विष्णु को पालन का और शिव को संहार का देवता माना गया है । संहार का अर्थ है, अनुपयोगिता एवं अनौचित्य का निवारण । हमारी आधी से अधिक शक्ति–सामर्थ्य अव्यवस्था एवं अनौचित्य के अपनाये रहने से नष्ट होती रहती है, इसे

बचाया जाना चाहिए । यज्ञोपवीत में शिव-देवता का आह्वान इन्हीं मान्यताओं को हृदयंगम करने के लिए किया जाता है ।

(५) सूर्य-

सूर्य अर्थात्-तेजस्विता, पराक्रम, श्रमशीलता । सूर्य की तरह हम निरन्तर संलग्न रहें, परिश्रम को अपना जीवन सहचर एवं गर्व का, गौरव का आधार मानें । आलस्य और प्रमाद को पास न फटकने दें । सदा जागरूक एवं चैतन्य रहें । पुरुषार्थी बनें । आत्महीनता एवं दीनता की भावना मन में न आने दें । तेजस्वी बनें । एक पैर से खड़े होकर पानी का लोटा सूर्य के सामने लुढ़का देने से नहीं, सूर्य की सच्ची उपासना, उसकी प्रेरणाओं को अपनाने से होती है ।

यज्ञोपवीत में पाँच देवताओं को वेद मंत्रों द्वारा प्रतिष्ठापित किया जाता है । उससे धारण करने वाले को यह प्रेरणा मिलनी चाहिए कि आन्तरिक एवं लौकिक जीवन सुविकसित बनाने के लिए वह साहसिक कदम उठाये । ब्रह्मा और यज्ञ की, सदाचरण और परमार्थ की नीति अपना कर आत्मबल बढ़ाये और विष्णु, महेश एवं सूर्य की-वैभव व्यवस्था एवं पुरुषार्थ की रीति अपना कर लोक बल बढ़ाये । यज्ञोपवीत उभय पक्षीय बलिष्ठता के संचय की प्रेरणा ग्रहण करने के लिए ही धारण किया जाता है । देवता भावनाओं का ही प्रतिनिधित्व करते हैं । जहाँ सद्भावनायें मौजूद हैं, वहीं देवताओं की प्रत्यक्ष उपस्थिति मानी जायगी और वहाँ ऋद्धि-सिद्धियों के वरदान अनायास ही बरसते रहेंगे ।

गायत्री मन्त्र दीक्षा-

यज्ञोपवीत धारण कराने के उपरान्त गायत्री मन्त्र की दीक्षा दी जाती है । छोटे-छोटे टुकड़ों में गायत्री मन्त्र का एक-एक भाग पहले आचार्य कहे पीछे शिष्य उसे दुहराता चले । इस मंत्र दीक्षा के समय गुरु और शिष्य दोनों ही पालथी मारकर मेरुदण्ड सीधा रखकर, उँगलियों को आपस में फँसाकर अँगूठे सीधे रखते हुए बैठते हैं । दोनों की दृष्टि नाखूनों पर ही रहनी चाहिए । यह मन्त्रोच्चारण तीन बार करने चाहिए ।

यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा है । यज्ञोपवीत के नौ धागे गायत्री के नौ शब्द हैं । तीन बीच की गाँठें व्याहृतियाँ भूर्भुवः स्वः हैं । एक बड़ी ब्रह्म ग्रन्थि ॐ है । यज्ञोपवीत धारण एक प्रकार से गायत्री महामंत्र को छाती से लपेट कर उसमें सन्निहित भावनाओं और प्रेरणाओं के अपनाने का व्रत लेना ही है । सद्‌बुद्धि की देवी गायत्री को जो सच्चे मन से अपनावेगा उसके विचार ही नहीं कार्य भी उत्कृष्ट स्तर के होंगे । गायत्री मंत्र की महत्ता एवं उपयोगिता पर हम अन्यत्र बहुत कुछ लिख चुके हैं, इसलिए यहाँ उसकी चर्चा न करके इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक यज्ञोपवीत धारी को कम से कम १०८ मंत्र नित्य नियमित रूप से जपने चाहिए और उसमें सन्निहित भावनाओं एवं प्रेरणाओं को श्रद्धापूर्वक अपनाना चाहिए ।

वेदारम्भ–

यज्ञोपवीत संस्कार के साथ ही प्राचीन काल में वेदारम्भ शिक्षा आरंभ होती थी । ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद की पुस्तकों को वेद कहते हैं, पर मूलतः वेद उस सद्‌ज्ञान को कहते हैं जो जीवन निर्माण, जीवन विकास एवं जीवन परिष्कार के उद्‌देश्य को पूरा करता है । उपरोक्त चार ग्रन्थ इस प्रयोजन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं । संसार में सफलतायें तभी मिल सकती हैं, जब अपने आपको विकसित एवं व्यवस्थित बना लिया जाय । वेद इसी आवश्यकता को पूर्ण करता है । वेदाध्ययन कराने वाले, जीवन निर्माण की कला, संजीवनी विद्या सिखाने वाले को गुरु कहते हैं । गणित, इतिहास मात्र पढ़ाने वाले तो शिक्षक एवं अध्यापक हैं । अध्यापकों का सम्मान करना होता है और गुरुओं का पूजन । वेदारम्भ कराने वाले गुरु को आत्मा का उद्धारक मानकर उसके प्रति श्रद्धा रखी जाती है, तदनुसार उसका पूजन भी करते हैं ।

गुरु पूजन–

फूलमाला, गुलदस्ता, नैवेद्य, अक्षत, रोली, धूप, दीप आदि से यज्ञोपवीतधारी गुरु–पूजन करता है । इसके लिए 'गुरु............' मंत्र पढ़ा जाता है । पूजन का प्रयोजन है–श्रद्धा की अभिव्यक्ति । आत्म

निर्माण की विद्या वही सफलतापूर्वक सिखा सकता है, जिसके प्रति अगाध श्रद्धा है। जिसके व्यक्तित्व एवं ज्ञान के प्रति सन्देह है, उसके द्वारा दिये हुए ज्ञान को शिष्य हृदयंगम ही नहीं कर पाता, इसलिए आत्म–ज्ञान की, ब्रह्म–विद्या की प्राप्ति में गुरु–भक्ति एक आवश्यक शर्त है। इस श्रद्धा की स्थापना का आरम्भ गुरु पूजन की इस प्रक्रिया के साथ किया जाता है।

इसके बाद वेद पढ़ाना आरम्भ किया जाता है। प्राचीनकाल में क्रमशः एक–एक वेद पढ़ाया जाता था। अब लोगों को न तो वैसी रुचि है न अवकाश। आजकल तो अर्थकरी शिक्षा का नाम ही 'विद्या' रख दिया गया है। ऐसी दशा में यही उचित समझा गया है कि चारों वेदों का एक–एक आरम्भिक मन्त्र यज्ञोपवीतधारी को पढ़ाकर उसे वेद से परिचित करा दिया जाय। संस्कार के बाद यज्ञोपवीतधारी का यह कर्तव्य आरम्भ होता है कि वह वेद ज्ञान से अपने को अलंकृत करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करता रहे। सदा वेद पढ़े। अर्थात् उपरोक्त ग्रन्थों एवं सद्ज्ञान का उद्देश्य पूरा करने वाले अन्य ग्रन्थों का स्वाध्याय मनन–चिन्तन करता रहे। इस निष्ठा को दैनिक धर्म कृत्य एवं नित्य कर्म की तरह आजीवन अपनाये रहे। वेद पढ़ाने से पूर्व वेद की पुस्तकों का पुष्प आदि से पूजन करते हैं, उसका मंत्र 'ॐ वेदोसि येन त्वं......' है।

भिक्षा अभिनय–

अध्ययन आरम्भ करने के उपरान्त भिक्षा माँगने की क्रिया की जाती है। यज्ञोपवीतधारी पीत वस्त्र की झोली बनाकर अपने माता, पिता, परिजनों अथवा उपस्थित सम्बन्धियों से भिक्षा माँगता है, वे लोग कुछ धन, अन्न, फल आदि देते हैं। इस उपलब्धि को गुरु के सम्मुख उपस्थित कर दिया जाता है।

इस क्रिया से व्यक्तिगत लाभ के लिए भिक्षा न लेने की मानवोचित मर्यादा एवं प्रतिष्ठा का उल्लंघन नहीं होता। बेशक व्यक्तिगत लाभ के लिए केवल अन्धे, अपाहिजों, असहाय एवं असमर्थों को ही भिक्षा लेने का अधिकार है, बाकी समर्थ और स्वस्थ व्यक्ति

के लिए भीख माँगना अत्यन्त लज्जा की बात है, पर यज्ञोपवीत संस्कार के समय प्रत्येक शिष्य को भिक्षा माँगनी पड़ती है, इस विसंगति से किसी को भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। अपने लिए नहीं, स्वार्थ के लिए नहीं, गुण एवं परमार्थ प्रयोजन के लिए भिक्षा माँगी जा रही है। इसमें दोष नहीं वरन् यह धर्म-कर्तव्य है।

सार्वजनिक धर्म कार्यों की पूर्ति एक व्यक्ति नहीं कर सकता, फिर कोई कर भी दे तो उससे जन-सम्पर्क का उद्देश्य पूरा नहीं होता। धर्म कार्यों में जन रुचि जगाने के लिए प्रत्येक का सहयोग आवश्यक होता है। यह सहयोग श्रम एवं धन के रूप में एकत्रित करना पड़ता है। इस कार्य को करने में लोग झिझकते हैं। व्यक्तिगत लाभ के लिए भिक्षा न माँगने का स्वाभिमानी स्वभाव, परमार्थ के लिए जन-सहयोग एकत्रित करने में भी बाधक बन जाता है। उसे हटाने का प्रयोजन ही यज्ञोपवीत के समय भिक्षा माँगने में है। अपने स्वजन सम्बन्धियों, मित्र और परिजनों को सदा यह प्रेरणा देनी चाहिए कि वे धर्म प्रयोजनों के लिए अपना श्रम एवं धन उदारतापूर्वक दिया करें।

इस पुण्य परम्परा को यज्ञोपवीत धारण के समय एक अभिनय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्राचीनकाल में बालकों की शिक्षा का भार केवल उनके अभिभावकों पर ही नहीं पड़ता था वरन् सारा समाज उसे मिल-जुलकर वहन करता था। आज वह उपयोगी परम्परा नष्ट हो गई, फिर भी उसकी उपयोगिता का स्मरण कराने के लिए यह भिक्षा अभिनय किसी कदर उपयोगी ही है।

इतना विशिष्ट कर्मकाण्ड करने के उपरान्त गायत्री हवन का शेष कार्य अग्नि स्थापन से लेकर विसर्जन तक पूरा करना चाहिए। खीर की पाँच आहुतियाँ स्विष्टकृत होम से पूर्व देनी चाहिए। उपस्थित लोग यज्ञोपवीत धारण करने वाले को आशीर्वाद दें और आचार्य मंगल फल देकर उसे विदा करें।

यज्ञोपवीत में निहित शिक्षायें-

यों तो ऊपर से देखने पर यज्ञोपवीत तीन बँटे हुए धागों की पतली डोरी के समान ही जान पड़ता है, पर इस देश के प्राचीन

मनीषियों ने इन तीन लड़ों में जितना गहरा तत्व ज्ञान भर दिया है, उसे यदि अच्छी तरह समझ कर व्यवहार में लाया जाय तो मानव को महामानव बनते देर न लगे । शास्त्रों के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति पर तीन ऋण रहते हैं-(१) देव ऋण (२) ऋषि-ऋण (३) पितृ-ऋण । जिन महापुरुषों ने मनुष्य जाति को दिव्य प्रकाश दिया है उनकी गिनती देवों में है । ऐसे आदर्शवादी, लोकसेवी महामानवों ने यदि अपना सर्वस्व होम कर हमारे सामने सद्मार्ग और सदाचारण का आदर्श न रखा होता तो आज हम आध्यात्मिक क्षेत्र में उस ऊँचाई पर न होते, जिससे हम संसार के अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठ और सम्मान के अधिकारी माने जाते हैं । इसलिए ऐसे महामानवों के उपदेशों का यथाशक्ति पालन करते हुए शुभ कर्मों में अपनी शक्ति लगाना हमारा परम कर्तव्य है । यही देव-ऋण से उऋण होना है ।

ऋषि की विशेषता यह है कि वे संसार में श्रेष्ठ विचारधारा का निर्माण और प्रचार करते हैं । जिन कार्यों को देव पुरुष प्रत्यक्ष रूप में करके संसार को आगे बढ़ाते हैं, उसकी तैयारी ऋषि-परम्परा के लोग ही अपने जीवन को कल्याणकारी ज्ञान के अध्ययन, मनन और चिन्तन के लिए अर्पित करके करते हैं । वे जानते हैं कि जब तक मनुष्यों की मनोभूमियों को अच्छी तरह परिष्कृत करके, जोत करके तैयार न किया जायेगा तब तक उसमें श्रेष्ठ विचारों और कर्मों के बीज नहीं जम सकते । ऋषि-ऋण के उऋण होने का मार्ग यही है कि हम स्वाध्याय, सत्संग और मनन द्वारा अपनी मनोभूमि को उत्कृष्ट बनावें और दूसरों को भी इस कार्य में, जैसे भी हमारे लिए सम्भव हो सहायता दें ।

पितृ का अर्थ है-पूर्वज । जो लोग हमको जन्म देकर अच्छी तरह जीवित रहने और प्रगति पथ पर अग्रसर होने योग्य बन गये उनके प्रति हमारा कर्तव्य प्रत्यक्ष ही है । हम जानते हैं कि भारतवासियों का गौरव किसी समय समस्त जगत में व्याप्त था और वे 'जगत गुरु' की पदवी से अलंकृत किये गये थे । उनके ऋण को चुकाने का तरीका यही है कि हम भी ऐसे काम करें जिससे उनके

गौरव में किसी प्रकार की कमी न आवे । कोई यह न कह सके कि वर्तमान समय में भारतवासी तो सब तरह से दीन, हीन और क्षुद्र दिखाई पड़ते हैं, इनके पूर्वज किस प्रकार महामानव के पद के योग्य माने जा सकते हैं ?

इस प्रकार देव–ऋण, ऋषि–ऋण और पितृ–ऋण को चुका कर मानव जन्म को सार्थक बनाने का सन्देश हमको यज्ञोपवीत के माध्यम से प्राप्त होता है । उस सन्देश का तात्पर्य यही है कि जब तक तुम अपने कर्तव्य का उचित रूप से पालन करके अपनी शक्तियों को अपने मानव–भ्राताओं की सेवा–परोपकार में लगा कर, इन तीनों ऋणों को न चुकाओगे तब तक तुम बन्धन मुक्त नहीं हो सकते । इस प्रकार यज्ञोपवीत सदैव हमारे कन्धे पर रहकर हमको महत्वपूर्ण उपदेश और शिक्षायें प्रदान करता रहता है । वह हमारा ध्यान उपरोक्त तीनों ऋणों और उनको उपयुक्त रूप में चुकाने की तरफ आकर्षित करता रहता है । इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम तन, मन, धन से–सच्चे ह्रदय से उनका पालन करें, तो हम भी उच्च पदवी के अधिकारी बन सकते हैं ।

◉

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

गायत्री विद्या सैट

१. गायत्री साधना और यज्ञ प्रक्रिया	९.००
२. गायत्री की शक्ति और सिद्धि	९.००
३. गायत्री की युगांतरीय चेतना	९.००
४. गायत्री की प्रचंड प्राण ऊर्जा	९.००
५. गायत्री की उच्चस्तरीय पाँच साधनाएँ	१०.००
६. देवताओं, अवतारों और ऋषियों की उपास्य गायत्री	९.००
७. गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार	९.००
८. गायत्री का सूर्योपस्थान	९.००
९. गायत्री और यज्ञ का अन्योन्याश्रित संबंध	९.००
१०. गायत्री साधना से कुंडलिनी जागरण	९.००
११. गायत्री का ब्रह्मवर्चस	१०.००
१२. गायत्री पंचमुखी और एकमुखी	१०.००
१३. महिलाओं की गायत्री उपासना	९.००
१४. गायत्री के दो पुण्य प्रतीक शिखा और सूत्र	९.००
१५. गायत्री का हर अक्षर शक्तिस्रोत	१०.००
१६. गायत्री साधना की सर्वसुलभ विधि	९.००
१७. गायत्री पंचरत्न	९.००
१८. गायत्री के अनुष्ठान और पुरश्चरण साधनाएँ	९.००
१९. गायत्री की चौबीस शक्तिधाराएँ	९.००
२०. गायत्री विषयक शंका समाधान	९.००
२१. गायत्री का वैज्ञानिक आधार	७.००
२२. गायत्री महाविज्ञान (प्रथम भाग)	५०.००
२३. गायत्री महाविज्ञान (द्वितीय भाग)	५०.००
२४. गायत्री महाविज्ञान (तृतीय भाग)	५०.००

संपर्क सूत्र :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मिशन की पत्रिकाएँ

(१) अखण्ड ज्योति (मासिक)

(धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का विज्ञान एवं तर्क-तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर खरा चिंतन)

वार्षिक शुल्क-108.00, आजीवन शुल्क-2000.00 रुपया।

अखण्ड ज्योति अंग्रेजी (द्वि-मासिक)

वार्षिक शुल्क-78.00 रुपया

पता : अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा-281003

फोन : (0565) 2403940

(२) युग निर्माण योजना (मासिक)

(व्यक्ति, परिवार, समाज निर्माण एवं सात आंदोलनों की मार्गदर्शक पत्रिका)

वार्षिक शुल्क-54.00, आजीवन शुल्क-1000.00 रुपया।

युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक)

(गायत्री महाविज्ञान, धर्म, अध्यात्म एवं युगानुकूल विचार परिवर्तन का मार्गदर्शन)

वार्षिक शुल्क-85.00, आजीवन शुल्क-1800.00 रुपया।

पता : युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-3

फोन : (0565) 2530128, 2530399

फैक्स : (0565) 2530200

(३) प्रज्ञा अभियान (पाक्षिक)

(युग निर्माण मिशन के क्रियाकलापों एवं मार्गदर्शन का समाचार-पत्र)

वार्षिक शुल्क-30.00 रुपया।

पाक्षिक वीडियो पत्रिका : युग प्रवाह

(युग निर्माण मिशन के प्रमुख क्रियाकलापों की दृश्य-श्रव्य जानकारी)

वार्षिक शुल्क-1500.00 रुपया।

पता : शांतिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखंड) फोन : 01334-260602

YS 17

4/-